International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

उत्तर–वैदिक काल में राजनीति एवं समाज

Dr. Rakesh Kumar
Department of History

शोध–आलेख सार– वस्तुतः प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करने के बाद उपलब्ध हिन्दू धर्म ग्रन्थों के आधार पर मिलने वाली जानकारी से पता चलता है कि लगभग 1000 से 600ई पूर्व भारत में जिस सभ्यता का विकास हुआ, उसे उत्तर वैदिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और पश्चिम उतरप्रदेश से प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तनों के अवशेष संभवतः इसी सभ्यता के हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर, आलमगीर तथा बटेसर आदि स्थानों पर प्राप्त लोहे के अस्त्र–शस्त्र तथा घरेलू वस्तुओं के अवशेष भी इसी युग के माने जाते हैं। इस युग में शासन की मुख्य व्यवस्था राजतंत्रीय रही थी। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की स्थिति श्रेष्ठ थी। आर्थिक क्षेत्र में प्रगति होने के कारण भी बड़े–बड़े नगरों का निर्माण हो चुका था। इसके साथ–साथ इस युग मे धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई। प्रस्तुत शोध पत्र में उतर वैदिक काल की राजनीति एवं समाज के बारे में एक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मूलशब्द– हिन्दू धर्म ग्रन्थ, उतर वैदिक सभ्यता, सामाजिक व्यवस्था, वैदिक साहित्य।

भूमिका– वास्तव में इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता की सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, अरण्यक उपनिषद तथा सूत्र ग्रन्थ आदि साहित्य वैदिक काल से सम्बन्ध रखता है। इस साहित्य के आधार पर जिस सभ्यता की जानकारी हमें मिलती है उसे उतर वैदिक सभ्यता कहा जाता है।[1] इसी साहित्य के आधार पर इसके

[1] मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ015.

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

रचनकाल का भी ज्ञान होता है और ऋग्वेद के बाद छठी शताब्दी ईसा पूर्व यह युग शुरू हुआ। इस युग में पुरातात्विक सामग्रियों का अभाव रहा तथा आर्य लोग इस समय सुदूर पूर्व और दक्षिण की ओर फैले हुए थे। ये लोग जैसे–जैसे पूर्व दिशा में बढते गए तो नगरीय जीवन का भी विकास होने लगा। उतर वैदिक साहित्य में कौशल, पंचाल, विधेय, मगध, आदि का जिक्र आता है। सतपत ब्राह्मण में लिखा गया है कि सबसे पहले आर्यों ने पूर्व के जंगलों एवं दलदल भूमि को सूखा कर बसने योग्य बनाया। दक्षिण में आर्य लोग विध्यांचल तक पहुंच चुके थे। एतरेय ब्राह्मण में उन समस्त जातियों का उल्लेख है जो दक्षिण में बसी हुई थी।

सभ्यता का विस्तार– चूंकि उतर वैदिक साहित्य से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि इस युग में नये–नये नगरों का उत्थान हुआ। इस समय सरस्वती का तट सूख चुका था, पंचनद की प्रतिष्ठा कम हो गई थी तथा वहां बसने वाली जातियों की निंदा भी होने लग गई थी। इस समय कुरू–पंचाल आर्य सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था और कुरूक्षेत्र पवित्र भूमि थी, जहां कुरूओं का राज था। इसकी पूर्व दिशा में पांचालों का राज्य था और उनकी राजधानी कामपिल्य थी। इसके पूर्व दिशा में कौशल का राज्य था जो अयोध्या नगरी के आस–पास फैला हुआ था। इसके दक्षिण में कौशम्बी नगर था, कुछ ओर पूर्व में वर्णावती के तट पर काशी राज्य था और यह नगर मध्य देश में विकसित हो रहे थे। इन राज्यों के पूर्व में विदेह, मगध, और अंग में आर्येतर जातियों का बसेरा था, चूंकि आर्य सभ्यता इन भागों में आसानी से नहीं फैल रही थी और उसके मार्ग में कई बाधाऐं थी। आर्य लोग जब विदेह और मगध तक फैले तो उन्हें कई जातियों से युद्ध करना पड़ा। अथर्ववेद में ब्रात्य जाति का उल्लेख है जो एक अनार्य जाति थी तथा यह आर्यो के सम्पर्क में आ चुकी थी। 1000–400ई0 पूर्व तक का समय आर्यों के

दक्षिण भारत में प्रवेश का समय माना जाता है।[2] अंततः आर्यो ने पूर्व और दक्षिण की ओर विस्तार कर लिया तथा गंगा–जमुना के दोआब का क्षेत्र उनकी सभ्यता का केन्द्र स्थान बन गया।

राजनीतिक जीवन– धीरे–धीरे प्राचीन भारत में आर्य सभ्यता के विस्तार के साथ–साथ उनके राज्यों व राजवंशों में भी बदलाव आया। ऋग्वेदकालीन वंशों का स्थान कुरू और पंचाल जैसे राजवंशों ने ले लिया। यद्यपि महाभारत के युद्ध के बाद कुरूवंश भी अपने सम्मान और शक्ति को खो बैठा तथा कौशल, विदेह, पंचाल, कलिंग, शूरसेन आदि राजवंशों की शक्ति में वृद्धि हुई। वास्तव में यह एक महान परिवर्तन था और अब राज्यों का निर्माण कुल के अधार पर न होकर भूगौलिक अधार पर होने लगा। इस समय आर्य लोगों को लोहे का ज्ञान हो चुका था तथा जहां से लोहे के शस्त्र प्राप्त हुए हैं, वहां के राजाओं के द्वारा अश्वमेघ करवाने की जानकारी भी प्राप्त होती हैं। इस समय अधिकांश राज्यों की शासन व्यवस्था राजतंत्रीय थी। बड़े राज्यों के निर्माण कारण राजा का सम्मान व प्रतिष्ठा बढ गई। अथर्ववेद में लिखा है कि यदि राष्ट्र राजा के हाथ में हो तो राजा का यह परम कर्त्तव्य है कि वह उसकी शक्ति का विस्तार करे। कुछ साहित्यिक ग्रन्थों में राजा के दैवी उत्पति के सिद्धान्त की चर्चा भी होती है। राजा का प्रमुख कर्त्तव्य शासन करना, न्याय करना, दुर्बलों की रक्षा करना, युद्ध करना, राज्य का विस्तार करना, प्रजा की भलाई करना तथा दुःख में प्रजा की मदद करना था। राजा के प्रमुख शासन अधिकारी पुरोहित, सेनानी और ग्रामीण थे। इसके अतिरिक्त सूत, संग्रहिणी, अक्षावाप, तक्षक, रक्षकार, क्षत्री आदि अन्य अधिकारी भी थे। इस काल में राजा के महत्वपूर्ण

[2] कैलाश खन्ना, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 57.

अधिकारियों को रत्निन या वीर कहकर पुकारा जाता था। इस काल में कानून और दण्ड व्यवस्था ऋग्वेद काल के समान ही थी।[3]

इस काल में आर्यो ने सैनिक संगठन को मजबूत बनाया और रथवान, घुड़सवार, तथा पैदल सैनिकों के साथ–साथ हाथियों का प्रयोग भी युद्ध में होता था। ऐसी भी संभावना व्यक्त की जाती है कि आर्यों ने अग्निबाण तथा अन्य हथियारों का निर्माण इस समय कर लिया था। ऋग्वेदकालीन सभा और समिति इस समय भी थी। पाणिनी के सूत्र में राजा को शासन, न्याय, धर्म और राजनीति में मदद देने वाली 10 ब्राह्मणों की एक परिषद का उल्लेख भी हुआ है।[4]

सामाजिक जीवन– इस समय वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी और समाज में ब्राह्मण व क्षत्रियों की स्थिति श्रेष्ठ हो गई थी। परन्तु ब्राह्मण वर्ण व क्षत्रिय वर्ण में प्रतिस्पर्धा देखने को मिली और बाद में इन दोनों वर्णों में समझौता हो गया। चूंकि ये दोनों वर्ण उत्पादन में भाग नहीं लेते थे और उत्पादन का लाभ स्वयं प्राप्त करना चाहते थे। इसके बावजूद ब्राह्मणों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और क्षत्रिय वर्ण ने धीरे–धीरे भूमि पर अपना स्वामित्व कायम कर लिया था। वैश्यों का स्तर इन दो वर्णों की तुलना में निम्न था और शूद्रों की स्थिति भी गिर रही थी। वस्तुतः शूद्र वर्ण को छोड़कर इस समय तीनों वर्णों के अधिकार व कर्तव्य सुनिश्चित हो चुके थे।[5] साधारणतया श्रेष्ठ जाति वाले पुरूष अपनी जाति से निम्न जातियों में विवाह कर सकते थे परन्तु निम्न जाति वाले पुरूषों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। जाति व्यवस्था भी अधिक कठोर नहीं थी और अन्तर्जातीय विवाह पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था। व्यक्ति की जाति कर्म पर आधारित थी। वर्ण व्यवस्था की यह स्थिति उपनिषद काल तक बनी रही।

---

[3] कैलाश खन्ना, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 58.
[4] वी.एम. आप्टे, दॉ हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपल, पृ0 40.
[5] अथर्ववेद, 5–17, 18.

इस काल में आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था और मानव जीवन को 25–25 वर्ष के चार भागों में बांटा गया था। व्यक्ति को चौथे आश्रम में अपना परिवार को छोड़कर सन्यासी का जीवन जीना पड़ता था तथा मोक्ष प्राप्ति का प्रयास भी इसमें शामिल था। इस समय स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी तथा समाज में कुप्रथाऐं आरम्भ नहीं हुई थी। विवाह को एक पवित्र बन्धन माना जाता था और आठ प्रकार के विवाह – ब्रह्म – विवाह, दैव – विवाह, अर्श – विवाह, प्रजापति – विवाह, गन्धर्व – विवाह, असुर – विवाह, राक्षस – विवाह तथ पिशाच – विवाह प्रचलित थे। इस समय कुछ स्थान पर एक पत्नी तथा कुछ स्थानों पर बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन था। स्त्रियों को अपना वर चुनने का अधिकार था तथा विधवा विवाह पर भी कोई अंकुश नहीं था। इस समय पिता का परम्परागत दृष्टिकोण बदल गया तथा वह अपने पुत्रों के प्रति वात्साल्य भाव रखता था।[6]

इस समय सती प्रथा प्रचलित नहीं थी और पर्दा प्रथा का भी अभाव था। स्त्रियां नृत्य, एवं संगीत सीखती थी और परिवार में उनका स्थान सम्मानजनक था। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री को पुरूष की अर्धांगिनी कहा गया है। यद्यपि अथर्ववेद में ऐसे मन्त्र आए हैं जिनसे पता चलता है कि इस समय स्त्री को प्रेम विवाह करने की आजादी थी, परन्तु अधिकांश तौर पर माता–पिता अपने मित्र एवं सगे सम्बन्धियों की मदद से कन्याओं का विवाह तय करते थे तथा दहेज देने की प्रथा भी प्रचलित थी।[7] फिर भी परिवार में कन्या का जन्म अनिच्छित माना जाता था और कन्या उत्पन्न होने पर अनेक प्रकार के जादू–टोनों का प्रयोग होता था।[8] पुत्र प्राप्ति की कामना भी इस युग में तीव्र हो रही थी। कन्या को दुख का कारण समझा जाता था और पुत्र को स्वर्ग की दिव्य ज्योति माना

[6] मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ018.
[7] अथर्ववेद, 5–8.
[8] अथर्ववेद, 6–2–3.

जाता था। कन्याओं के विवाह के अवसर पर उतम पति की प्राप्ति के लिए देवताओं की स्तुति की जाती थी। लेकिन कन्या के विवाह की उम्र अनिश्चित थी तथा परिवार में कन्या का स्थान विवाहित स्त्री की तुलना में निम्न था। स्त्रियों की स्थिति भी निरन्तर गिर रही थी तथा वे समिति में प्रवेश नहीं कर सकती थी। उन्हें मानव समाज में बहुत बड़ा दोष माना जाने लगा था। कुछ अवसरों पर उनका महत्व देखा जा सकता था। अश्वमेघ यज्ञ तथा राजसूय यज्ञ में उनकी उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी, लेकिन यह नियम पढ़ी लिखी स्त्रियों के लिए लागू होता था। स्त्रियां शिक्षा देने का काम भी कर सकती थी और उन्हें पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन तथा यज्ञ करने का अधिकार था।[9] अंततः राजकुल की स्त्रियों और साधारण स्त्रियों में अन्तर था। इस समय किसी स्त्री के पति मर जाने पर उसे पति की चिता पर बगल में लेटना पड़ता था और उसे बाद में उसे वहां से उठा लिया जाता था। यह कार्य उसका देवर या ऐसा पुरूष करता था जो उससे विवाह करने का इच्छुक था।

इस समय शवों को जलाने की प्रथा थी। इस समय स्त्री के पति के मर जाने पर उसके साथ जल जाने की प्रथा समाप्त हो चुकी थी तथा विधवा को पुनर्विवाह करने की आज्ञा थी। परन्तु उतर वैदिक साहित्य में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि पारिवारिक सम्पति पर विधवा का अधिकार होता था। चरित्रहीन स्त्रियों अर्थात वेश्याओं का उल्लेख भी उतर वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी गणिकाओं का उल्लेख हुआ है।[10]

इस युग में कृषि और पशु पालन का कार्य होता था तथा गेंहूँ, तिल, दलहन, जौं आदि पैदा किये जाते थे। इसके अतिरिक्त धान की कृषि भी होती थी। इस समय उद्योग

[9] शतपथ ब्राह्मण, 1—2—14—13.
[10] मैत्रायणी संहिता, 1—10—11.

धन्धों का काफी विकास हुआ तथा समाज में कार्य विभाजन देखने को मिला। समाज में अनेक प्रकार के पेशे शुरू होने से समाज में विभाजन शुरू हो गया जो कालांतर में पेशे के स्थान पर जन्म से सम्बन्धित हो गया। उतर वैदिक साहित्य में इस बात का तो उल्लेख नहीं है कि दासों की स्थिति कैसी थी, परन्तु दास प्रथा अवश्य प्रचलित थी। अंततः इस युग में आर्य–अनार्य युद्ध की प्रवृति समाप्त हो चुकी थी और अनार्य लोगों के प्रति आर्यों का व्यवहार अधिक क्रूर नहीं था।

इस समय शिक्षा का आरम्भ उपनयन संस्कार से होता था और शिक्षा की आश्रम प्रणाली प्रचलित थी। स्त्री–पुरूष दोनों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। इस समय आर्यों को लेखन और लिपि का ज्ञान हो गया था। शिक्षा के मुख्य विषय इतिहास, व्याकरण, गणित, तर्क, ज्योतिष, नीति शास्त्र, आयुर्वेद आदि थे। इस समय धर्म और दर्शन में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई तथा कर्मकाण्ड और विभिन्न संस्कारों पर भी बल दिया गया। कर्मकाण्ड, यज्ञ और बलि से विरक्त होकर तप का विचार भी इसी काल में उत्पन्न हुआ।

सारांश– अतः उतरवैदिक साहित्य से पता चलता है कि यह सभ्यता दक्षिण तक फैल चुकी थी और इसका कार्यकाल 1000 से 400 ई0पूर्व तक रहा। दक्षिण भारत में आंध्र, स्वर, पुलिन्द आदि जातियों की सता बनी रही जो वैदिक सभ्यता के प्रभाव से मुक्त थी। अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि इस काल में आर्यों ने पूर्व और दक्षिण की ओर विस्तार कर लिया था लेकिन इसका अधिक विस्तार उतर भारत में ही हुआ। यह आश्रम व्यवस्था पर आधारित सभ्यता थी और इसमें स्त्रियों को भी शिक्षा का अधिकार था। इसके साथ–साथ आर्थिक जीवन में पर्याप्त प्रगति भी देखने को मिली तथा धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी विकास हुआ।

सन्दर्भ सूची–

1. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी, 1967.
2. भरतलाल चतुर्वेदी, महाभारतकालीन समाज व्यवस्था, विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981.
3. द्विजेन्द्र नारायण झा, प्राचीन भारतः सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
4. सुमन गुप्ता, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000.
5. मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
6. डी.एन.झा, प्राचीन भारतः एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005.
7. प्रशान्त गौरव, प्राचीन भारत, लगभग 600ई0 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
8. कैलाश खन्ना, प्राचीन भारत का इतिहास, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010.
9. रणवीर चक्रवर्ती, भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600 ई0 तक, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
10. गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतः इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.